पाठ में है न, शील पाहुड़ ? **शील नाम स्वभाव का है।** यह अधिकार पूरा हो गया है, परन्तु यह पण्डितजी इसका थोड़ा लिखते हैं। **आत्मा का स्वभाव शुद्ध ज्ञान-दर्शनमयी चेतनास्वरूप है।** भगवान आत्मा तो ज्ञान-दर्शन की चेतनामय अभेद है, उसे आत्मा कहते हैं। **वह अनादि कर्म के-संयोग से विभावरूप परिणमता है।** है तो वह ज्ञान-दर्शन चेतनामय स्वभाव वस्तु आत्मा, परन्तु अनादि कर्म के संग से विकाररूप से-

---

१. तर्ककमल के सूर्य=तर्करूपी कमल को प्रफुल्लित करने में सूर्य समान।

२. शब्दसिन्धु के चन्द्र=शब्दरूपी समुद्र को उछालने में चन्द्र समान।

दोषरूप से होता है। उनके भेद बहुत हैं। **उनके विशेष मिथ्यात्व-कषाय आदि अनेक है, उन्हें राग-द्वेष-मोह भी कहते हैं। उनके संक्षेप चौरासी लाख भेद हैं।** उस विभाव के चौरासी लाख भेद हैं। कुशील, कुशील। **विस्तार से असंख्यात अनन्त होते हैं। इनको कुशील कहते हैं।**

भगवान आत्मा जानन-देखन-आनन्द, इससे उल्टे जितने विकल्प-भेद हैं, वे सब कुशील कहे जाते हैं। **इनके अभावरूप संक्षेप से चौरासी लाख उत्तरगुण हैं...** विकल्प दु:खरूप हैं। इन सब विभाव का अभाव करके, स्वरूप चैतन्यमूर्ति भगवान आत्मा की अस्ति का विकास करके, अनुभव करके प्रगट दशा हो, उसे चौरासी लाख उत्तरगुण कहने में आता है। विस्तार अनन्त... **यह तो सामान्य परद्रव्य या सम्बन्ध की अपेक्षा से शील-कुशील का अर्थ है प्रसिद्ध व्यवहार स्त्री के संग की अपेक्षा से कुशील के अठारह हजार भेद कहे हैं...** यह सब बात आ गयी है, यह शील और कुशील का अर्थ। **इनका अभाव, शील के अठारह हजार भेद हैं, वे जिनमार्ग के जानकर पालना। लोक में भी शील की महिमा प्रसिद्ध है, जो पालते हैं, वे स्वर्ग-मोक्ष का सुख पाते हैं। उन्हें हमारा नमस्कार वे हमें भी शील की प्राप्ति करो।** हमारा आत्मा आनन्द और ज्ञान-दर्शन का पिण्ड प्रभु है; उसकी ज्ञाता-दृष्टा और आनन्द की दशा हमें प्रगट हो, यह हमारा स्वरूप है और यह हमारा धर्म है। समझ में आया?

अन्तर बीच में दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम आते हैं, वह कुशील है, सुशील नहीं; सुशील तो आत्मा आनन्दस्वरूप ज्ञान और दर्शन की चेतनामय अभेदस्वरूप, उसकी एकता से प्रगटी हुई वीतरागी निर्मलदशा, उसे शील और सुशील तथा उसे धर्म कहते हैं। **अन्य वस्तु के संगराची जिनभाव भंग करि** अन्य आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप को छोड़कर अन्य वस्तु मुझसे निजभाव भंग करि, अपना वीतरागभाव है, उसे भंग करके राग-द्वेष उत्पन्न करता है, वह सब कुशील और अधर्म तथा दु:खरूप है। **वर्ते ताहिं कुशील भाव भाखे कुरंग भरी।** वह राग का रंग पुण्य-पाप के विकल्प का रंग वह कुरंग है। आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप है, उसका अन्तर ज्ञान और आनन्द का रंग लगने से ज्ञान और आनन्द की दशा प्रगट हो, उसे भगवान जैनधर्म कहते हैं। सूक्ष्म बात है। बण्डीजी!

ताहिं तजे मुनिराज शुद्ध जल आनन्दस्वरूप भगवान ऐसे चैतन्य आनन्द के जल को धर्मी जीव अन्तर्मुख होकर पाकर शुद्धरूपी जल, **धोयी कर्मरज** - उसने कर्म की रज

धो डाली है। वह सिद्धि को पाता है और अविचल सुख को पाता है। यह **निश्चय शील शुद्ध...** आत्मा का आनन्द और ज्ञान चैतन्यस्वरूप, उसकी एकाग्रता का ब्रह्मचर्य वह निश्चय ब्रह्मचर्य है। वह निश्चय शील, **व्यवहार रे तिय तजि...** व्यवहार से स्त्री का त्याग वह व्यवहार कहलाता है। **जो पावे शिव विधि।** जिसे भव को-जन्म नहीं, ऐसे धर्मात्मा को, जिनेन्द्र को मैं नमन करता हूँ।

इन **नमूँ पंच पद ब्रह्ममय।** इससे मांगलिक करते हैं। **नमूँ पंच पद ब्रह्ममय,** पाँच पद ब्रह्म आनन्दमय है। अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, वह तो अतीन्द्रिय आनन्दमय पाँच पद है। यह बाहर का वेश है, वह कहीं पद नहीं है। ऐसे पंच महाव्रत के अन्दर विकल्प उठते हैं, वह कहीं निजपद नहीं है, वह आचार्य, उपाध्याय, साधु पद नहीं है। ब्रह्ममय निजपद है। आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा, तीर्थंकर सर्वज्ञ परमेश्वर ने देखा, जाना और कहा—ऐसे आत्मा को आनन्दमय करके प्रगट करते हैं। ऐसे... **मंगलरूप** हैं, मांगलिक हैं। **अनूप** अन्त जिसकी कोई उपमा नहीं '**उत्तम चरण सदा लहूँ**', ऐसे भगवान सन्तों के पाँच परमेष्ठी... **फिरि न परुँ भवकूप** फिर से भव में आऊँ नहीं। ऐसे अधिकार पूरा किया।

अब मात्र नियमसार शुरु करना है न? सेठी! नियमसार नहीं लाये? सेठी को नियमसार दो, नियमसार। आँख से दिखायी देता है या तकलीफ है?

अब, यह नियमसार शास्त्र आज शुरु होता है। मांगलिकरूप से आज इसका मंगलाचरण है। **ॐ परमात्मने नमः श्रीमद् भवगत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत** कुन्दकुन्दाचार्य परमात्मा (शुरु करते हैं)। नियमसार, जीव अधिकार।

निमयसार अर्थात् आत्मा शुद्ध चैतन्यमय के सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र को नियम कहते हैं। आत्मा शुद्ध अखण्ड आनन्दमय है। उसका आश्रय लेकर सम्यग्दर्शन हो, उसका आश्रय लेकर सम्यग्ज्ञान हो; उसका आश्रय लेकर स्थिरता हो, उसे नियम अर्थात् मोक्ष का मार्ग कहते हैं। समझ में आया? और सार अर्थात् विकार के-व्यवहार के विकल्परहित. ऐसा आत्मा अखण्ड आनन्दस्वरूप है। उसकी सन्मुखता का दर्शन, ज्ञान और चारित्र, वह विकार रहित; उसे नियमसार कहने में आता है। शुरुआत होती है, हों! पाँच-छह वर्ष पहले पढ़ा है परन्तु यह...

जीव अधिकार..... कुन्दकुन्दाचार्यदेव की गाथा है और टीका, पद्मप्रभमलधारिदेव दिगम्बर मुनि वनवासी / जंगल में रहते थे, उन्होंने इसकी टीका बनायी है। अब पहले नमस्कार करते हैं। पद्मप्रभमलधारिदेव टीका करते हुए, नियमसार की टीका अर्थात् स्पष्टीकरण करने से पहले मंगलाचरण करते हैं।

त्वयि सति परमात्मन्मादृशान्मोहमुग्धान्,
कथमतनुवशत्वान्बुद्धकेशान्यजेऽहम्।
सुगत-मगधरं वा वागधीशं शिवं वा,
जितभव-मभिवन्दे भासुरं श्रीजिनं वा।।१।।

मंगलाचरण परमात्मा का। **सात श्लोकों द्वारा मंगलाचरणादि करते हैं।**

हे परमात्मा! देखो! परमात्मा कैसे हैं?—यह पहिचानकर वन्दन करते हैं। अरिहन्तदेव-सर्वज्ञदेव जिन्हें अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द प्रगट हुए हैं; उन्हें कहते हैं कि हे नाथ! **हे परमात्मा! तेरे होते हुए...** इस जगत में आपकी-परमात्मा की-अस्ति होने से **मैं अपने जैसे (संसारियों जैसे)...** मेरे जैसे अर्थात् संसारी जैसे - ऐसा लिया है। **मोहमुग्ध...** मिथ्यात्व में मोहमुग्ध, ऐसे ईश्वर नाम धरानेवालों को कैसे पूँजू? - ऐसा कहते हैं। **और कामवश बुद्ध को...** शब्द है न... शरीर बिना का काम। जो विशय में वश हो गये हैं, स्त्री के वश हुए हैं, जगत के कर्तारूप से मानकर राग के आधीन हो गये हैं, ऐसों को मैं कैसे पूँजू? समझ में आया?

हे परमात्मा! तू तो मोहरहित है, तूने काम को वश किया है; काम के वश तू हुआ नहीं है। ऐसे परमात्मा सर्वज्ञदेव पूर्ण आनन्द को प्राप्त, अरिहन्त पद में हों तो शरीर आदि होता है, परन्तु उनका शरीर परम औदारिक (और) रोग, क्षुधा, तृषा रहित होता है। ऐसे परमात्मा को छोड़कर, इन काम के वश हुए, राग के वश हुए - ऐसों को मैं क्यों नमूँ? अन्तर डालते हैं, अन्तर। समझ में आया? ऐसे बुद्ध को, लो! यह बौद्ध कहते हैं न? बुद्ध भगवान और बुद्ध भगवान, वे सब मोह-मुग्ध थे, उन्हें आत्मा का भान नहीं था। राग में मुग्ध, क्षणिक पद को माननेवाले। आहा..हा..!

ब्रह्मा-विष्णु-महेश... यह सब अज्ञानरूप से वस्तुस्वरूप को माननेवाले,.. ऐसे जीवों को; हे परमात्मा! आपकी वीतरागता और निर्दोषता को मैंने जाना और इसके

अतिरिक्त अन्यों को अब मैं कैसे नमूँ? '....' **को क्यों पूजूँ ? (नहीं पूजूँगा) जिसने भवों को जीता है, उसकी मैं वन्दना करता हूँ।** आहा..हा..! जिन है न? जिन। जिसने आत्मा के आनन्द द्वारा उदयभाव-राग को जिसने जीता है। परमस्वभाव आत्मा का, उसके द्वारा जिसने पहला मिथ्यात्व जीता / नाश किया, पश्चात् अस्थिरता नाश की और जिसे पूर्ण आनन्द और स्थिरता परमात्मदशा प्रगट हुई है। जिसने भव जीते अर्थात् अब भव नहीं, ऐसे 'जिन' को मैं वन्दन करता हूँ। ऐसे परमात्मा को वन्दन करता हूँ। पहले देव को वन्दन किया।

देखो! देव ऐसे होते हैं, उन्हें बतलाया है। जिसे स्त्री हो और हाथ में हथियार हो और राग के आधीन हो गया हो, वे सब परमात्मा नहीं है। ईश्वर आदि नाम धराये हों, परन्तु ईश्वर तो ऐसे होते हैं। जिन्होंने भव को जीता, इसका अर्थ कि जो अभवस्वरूप आत्मा इनने प्रगट किया और उदयभाव—भव का कारण—उसे स्वयं नाश किया। आहा..! उदय क्या और स्वभाव क्या?

सम्यग्दर्शन होते ही पहले तो चैतन्यस्वभाव आनन्द है। यह उदय (भाव) मेरा नहीं, ऐसे जीत लिया है। धर्म की पहली दशा होने पर, भव और भव का कारण मुझमें नहीं। समझ में आया? सम्यग्दर्शन होने के बाद जरा रागादि रहे हैं, वह भी स्वरूप की स्थिरता द्वारा जिनने राग का व्यय अर्थात् नाश किया है। जिन्हें भव नहीं है, जिन्हें सिद्धपद-परमात्मपद प्राप्त हुआ है; उन्हें मैं नमस्कार करता हूँ। इसके अतिरिक्त मैं किसी को नमस्कार नहीं करता।

उसे प्रकाशमान ऐसे श्रीजिन कहो,... प्रकाशमान, लो! ऐसा कहा। **भासुरं** चौथा पद है न? **भासुरं**-ऐसे सर्वज्ञ परमेश्वर, जिनकी ज्ञान की दशा में तीन काल-तीन लोक ज्ञात हुए हैं - ऐसे केवलज्ञानी परमात्मा **प्रकाशमान...** जगत में **भासुरं** प्रकाशमान हुए। ऐसे श्री जिन, ऐसे परमात्मा जिन भगवान को **सुगत कहो,...** उन्हें बुद्ध कहो, ऐसा कहते हैं। ये बुद्ध हुए, वे नहीं। जो यह पहिचान करके (वन्दन करते हैं)। ऐसे के ऐसे ऊपर-ऊपर से वन्दन करे और (पूजे), वह कहीं सच्ची वस्तु नहीं है। वह तो अज्ञान में मरकर चार गति में जानेवाले हैं। समझ में आया?

उन्हें **सुगत कहो, गिरिधर कहो, वागीश्वर कहो या शिव कहो।** परन्तु ऐसी दशा प्राप्त हो, उन्हें यह बोल लागू पड़ते हैं, दूसरे को बोल लागू नहीं पड़ते। नीचे अर्थ है।

(१) बुद्ध को सुगत कहा जाता है। बुद्ध है न, उन्हें सुगत। **सुगत अर्थात (१) शोभनीकता को प्राप्त....** वास्तव में तो आत्मा की आनन्द आदि शोभनीक दशा, उसे प्राप्त (हुए), उन्हें सुगत कहने में आता है। वह सुगत तो जिनेश्वरदेव हैं। समझ में आया? **अथवा (२) सम्पूर्णता को प्राप्त।** सु-गत, जिन्हें भली दशा प्राप्त हुई है अथवा सम्पूर्ण गत जिन्हें सुगत, भला जिन्हें प्राप्त पूर्ण हो गया है। अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द—ऐसी दशा को प्राप्त, उसे सुगत कहने में आता है। वे **श्री जिनभगवान हैं.....** वे जिन भगवान सुगत हैं, बाकी कोई सुगत नहीं है।

(१) मोहरागद्वेष का अभाव होने के कारण शोभनीकता को प्राप्त हैं.... परमात्मा को तो मिथ्यात्व नहीं, राग-द्वेष नहीं। सम्यग्दर्शन और वीतरागता प्रगट हुई है, इससे वे शोभा को प्राप्त हैं, वे शोभनीक हैं। शरीरादि और बाहर की इज्जत और पैसा-फैसा, वह शोभनीक है नहीं। भगवान **केवलज्ञानादि को प्राप्त कर लिया है....** सर्वज्ञ प्रभु तो पूर्ण ज्ञान, पूर्ण दर्शन, पूर्ण आनन्द प्राप्त हैं। अहो! ऐसी महासत्ता का स्वीकार, जगत में ऐसे परमेश्वर हैं, ऐसा इसे ज्ञान में लाकर, महासत्ता एक समय की दशा पूर्णता को प्राप्त पूर्ण तीन काल-तीन लोक जाने, ऐसी सत्ता को जिसने अन्तर में स्वीकार किया है, उसने आत्मा का स्वीकार किया है, तब उस सत्ता का स्वीकार किया है। ऐसी अनन्त-अनन्त पर्यायों की मैं खान, सागर आत्मा, ऐसे चैतन्य भगवान के सन्मुख देखे बिना और सन्मुख होकर आत्मा को माने बिना ऐसे केवलज्ञानी मान्यता में यथार्थरूप से नहीं आ सकते। समझ में आया? लो!

यहाँ सुगत कहा है। जिनदेव को सुगत कहने में आता है। शोभनीक और पूर्णता को प्राप्त। पूर्ण क्या कहलाता है? ऐसे तो सब कहे, केवली, केवली केवलज्ञानी भगवान तीन काल को जानते हैं तथा वापस उन्हें क्षुधा और उन्हें तृषा और उन्हें रोग और उनका उपयोग एक समय में ज्ञान और दूसरे समय में दर्शन, (किन्तु) यह सब केवलज्ञान का स्वरूप नहीं है। अज्ञानी ने स्वयं कल्पित किया हुआ स्वरूप है। समझ में आया? उन्हें सुगत कहते हैं।

अब, **गिरिधर,...** '**अगधरं**' था न? '**अगधरं**'। '**अगधरं**' था न पाठ में? '**सुगतमगधरं**' अग अर्थात् पर्वत के धरनेवाले। उन **(२) कृष्ण को गिरिधर (अर्थात् पर्वत को धारण कर रखनेवाले) कहा जाता है।** कृष्ण थे, एक छोटी अंगुली से उन्होंने बड़ी शिला थी,

उसे उठाया है। वासुदेव थे न? वासुदेव। ऐसी शक्ति थी। गिरिधर-पूरा गिरि-पूरा पर्वत अंगुली से उठाया था। कहते हैं कि उन्हें गिरिधर कहा जाता है। **श्री जिनभगवान अनंत वीर्यवान होने से उन्हें यहाँ गिरिधर कहा है।** उस अंगुली से, छोटी अंगुली से मेरु गिरिधर गोवर्धन उठाया, वह नहीं। यह तो जिसने अनन्त वीर्य से लोकालोक को जाना और वीर्य में (बल में) अपनी शक्ति को रोक रखा, उन्हें यहाँ अनन्त वीर्यवान को गिरिधर कहा जाता है। आहा! समझ में आया? जिनदेव अनन्त वीर्यवान होने से, गिरि अर्थात् अनन्त वीर्यवाले (होने से) उन्हें गिरिधर कहा जाता है।

वागीश्वर,... ब्रह्मा को अथवा बृहस्पति को वागीश्वर (अर्थात् वाणी के अधिपति) कहा जाता है। ब्रह्मा कहते हैं न? चार वेद पढ़े और ऐसे पढ़े इत्यादि। वागीश्वर कहते हैं; और वृहस्पति, इन्द्रों के गुरु—ऐसा कहा जाता है। **श्री जिनभगवान दिव्यवाणी के प्रकाशक होने से....** भगवान की वाणी दिव्य प्रधानता से ॐ ध्वनि खिरे। सर्वज्ञ परमेश्वर हों, जिन्हें परमात्मपना प्रगट हुआ है, उनके ॐध्वनि खिरती है, ऐसी (हमारे जैसी) वाणी नहीं होती। समझ में आया? दिव्य अर्थात् प्रधान आवाज। समवसरण में... **वाणी के प्रकाशक होने से उन्हें यहाँ वागीश्वर कहा है।** लो! ये वाक् के ईश्वर, वाणी के ईश्वर। वाणी का ईश्वर आत्मा होगा? दूसरे की ऐसी वाणी नहीं है, इस अपेक्षा से व्यवहार से वाणी के ईश्वर कहे जाते हैं। वाणी तो जड़ है, परन्तु दूसरे की वाणी ऐसी नहीं होती। सर्वज्ञ वीतराग के अतिरिक्त ऐसी वाणी किसी को-छद्मस्थ को-गणधर को भी नहीं होती, इसलिए उन्हें (जिनदेव को) वागेश्वर कहा है।

(४) महेश को (शंकर को) शिव कहा जाता है। शंकर को शिव कहते हैं न? **श्री जिनभगवान कल्याणस्वरूप होने से उन्हें यहाँ शिव कहा गया है।** शिव का अर्थ कल्याणस्वरूप होता है। उपद्रव नहीं, जिसमें विघ्न नहीं - ऐसा आत्मा का कल्याणस्वरूप प्रगट हुआ, अखण्ड आनन्दमय दशा प्रगट हुई, उसे शिव कहा जाता है। बस न? यह हो गया, यह कलश हुआ, पहला कलश हुआ। मंगलाचरण के सात श्लोकों में पहला। (अब) दूसरा।

वाचं वाचंयमीन्द्राणां वक्त्रवारिजवाहनम्।
वन्दे नयद्वयायत्त-वाच्य-सर्वस्व-पद्धतिम्।।२।।

वाचंयमीन्द्रों का (जिनदेवों का) मुखकमल जिसका वाहन है... आहा..हा..! क्या कहते हैं ? **वाचंयमीन्द्र=मुनियों में प्रधान अर्थात् जिनदेव; मौन सेवन करनेवालों में श्रेष्ठ...** एक ओर वागीश्वर कहा, एक ओर मौन सेवन करनेवालों में श्रेष्ठ कहा। इच्छा नहीं है न! वे भगवान तो मौन ही हैं। वाणी के कारण वाणी निकलती है – ऐसा कहते हैं। वागीश्वर – वाणी के ईश्वर, सबकी अपेक्षा खिरी, परन्तु स्वयं तो मौन है। ऐई! पण्डितजी! एक ओर वागीश्वर; एक ओर मौन इन्द्र, मौन के इन्द्र। जो अपेक्षा है, उसे समझना चाहिए न ? **मौन सेवन करनेवालों में श्रेष्ठ अर्थात् जिनदेव; वाक्संयमियों में इन्द्र समान अर्थात् जिनदेव। (वाचंयमी=मुनि; मौन सेवन करनेवाले; वाणी के संयमी।)** में जिनदेव पूरे संयमी हैं; उन्हें इच्छामात्र है नहीं। वाणी, वाणी के कारण निकलती है।

कहते हैं कि **मुखकमल जिसका वाहन है...** वाणी, हों! **और दो नयों के आश्रय से सर्वस्व कहने की जिसकी पद्धति है,...** क्या कहते हैं ? निश्चय और व्यवहार, दो नयों से जिनके कथन हैं। निश्चयनय से निश्चय का स्वरूप कहते हैं, व्यवहार से भी व्यवहार का स्वरूप है – ऐसा कहते हैं। व्यवहावर नहीं है, ऐसा नहीं है। व्यवहार, धर्म नहीं है; धर्म, निश्चय आत्मा का शुद्ध श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति, वह धर्म; परन्तु व्यवहार होवे, उसे व्यवहारनय बतलाते हैं; निश्चय को निश्चय बतलाते हैं। दो नय का कथन है वीतराग का। इसमें से निकालते हैं न ? भगवान का दो नय का कथन है, परन्तु दो नय का कथन किस प्रकार से ? है, ऐसा दो नय का। समझ में आया ?

जैसे निश्चय से अभेदस्वरूप भगवान आत्मा है, वह सम्यग्दर्शन का विषय है। सम्यग्दर्शन उस अभेद चैतन्य के आश्रय से प्रगट होता है, वह निश्चय है परन्तु फिर भी एक समय की पर्याय, राग आदि है – ऐसा व्यवहार भी बताते हैं। दो नय का कथन है, तब प्रमाणज्ञान होता है। समझ में आया ? इसका अर्थ ऐसा नहीं कि व्यवहार से भी लाभ होता है और निश्चय से भी लाभ होता है। ऐसा भगवान का कथन है, ऐसा नहीं है। दो नय का विषय है और दो नय की पद्धति कहने की है। यह सब अभी भारी गड़बड़ दो नयों में उठी है न ?

मुमुक्षु : एक नय कहें तो क्या बाधा आती है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : एक नय आवे तो पर्याय, रागादि अस्तिरूप से है, उसका नाश

हो जाता है। गुणस्थान भेद आदि सब व्यवहार है। व्यवहार है, व्यवहारनय का स्वरूप बताते हैं। गुणस्थान भेद, चार तीर्थ, सम्यग्दर्शन आदि पर्याय वह सब व्यवहार है। वह (आत्मा) तो त्रिकाली वस्तु है। व्यवहार, व्यवहाररूप से बताते हैं और निश्चय, निश्चयरूप से (बताते हैं)। भगवान की वाणी दो नयों के आश्रित सर्वस्व कहने की जिसकी पद्धति भाषा है। सम्यग्दर्शन में, सम्यग्ज्ञान में, सम्यक्चारित्र में सबमें दो नय का कथन है। समझ में आया?

निश्चय का निश्चयरूप से और व्यवहार का व्यवहाररूप से प्रमाणज्ञान कराते हैं। सम्यग्दर्शन, देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा, उसे सम्यग्दर्शन व्यवहार कहते हैं। है नहीं; है नहीं, उसे कहना, वह व्यवहारनय का विषय है। अन्तरस्वरूप भगवान आत्मा स्वसन्मुख होकर अभेद का आश्रय करे और सम्यग्दर्शन हो, वह सच्चा सम्यग्दर्शन है, परन्तु उस सच्चे के साथ में ऐसा विकल्प भी (होता है)। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग, भक्ति का राग होता है। ऐसे दो नय का कथन वीतरागमार्ग में है। एक नय का कथन हो तो एकान्त हो जाता है। कहो, पण्डितजी! यह गजब!

दो नयों के आश्रय से सर्वस्व कहने की जिसकी पद्धति है, उस वाणी की... मुखकमल जिसका वाहन है, ऐसा कहा न? यह तो एक भाषा है, बाकी वास्तव में तो सम्पूर्ण शरीर में से वाणी निकलती है परन्तु लोकभाषा में जैसे समझ में आवे न, उस प्रकार से बात की है। मुखकमल - ऐसा कहा न? यहाँ से वाणी निकलती है। व्यवहार लोगों को समझाने के लिये, बाकी पूरे शरीर में से है। परमात्मा तीर्थंकर होते हैं, उन्हें तो पूरे शरीर में से ॐध्वनि उठती है। मुँह बन्द होता है, कण्ठ हिलता नहीं, होंठ हिलते नहीं - ऐसी ॐध्वनि भगवान के मुख में से आती है। वह वाणी दो नय के आश्रित कहने की पद्धति है।

निश्चय जीव, व्यवहार जीव। निश्चय जीव अभेद अखण्डस्वरूप (है), वह। एक समय की पर्याय और राग, वह व्यवहार जीव है। ऐसे दो नय का कथन सर्वस्व वीतरागमार्ग में होता है परन्तु दो नय में एक नय जाननेयोग्य है और एक नय आदरणीय है; वरना दो नय पृथक् नहीं पड़ सकते। समझ में आया? यह कहते हैं, हों! बहुत से इसमें से निकालकर। देखो! भगवान की वाणी दो नय के आश्रित है। किसने इनकार किया दो नय के आश्रित नहीं? दो नय का कथन नहीं? यह त्रस जीव, स्थावर जीव, गति आदि

कहे, वह सब व्यवहार है। वह व्यवहार जीव है, परन्तु अखण्ड अभेद चैतन्यमूर्ति आत्मा, जिसे एक समय की पर्याय भी स्पर्श नहीं करती, ऐसा अभेद ध्रुवस्वभाव, वह निश्चय जीव है; कि जिस जीव के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है। लो! इन दो नय के आश्रय से इसमें कथन है। बहुत से कहते हैं कि एक नय का कथन है, एक नय का कथन है। तुझे किसने एक नय का कहा? एक नय का अभेद विषय, वह आदरणीय है; दूसरा विषय है, वह जाननेयोग्य है। वापस सबमें ऐसा है।

उस वाणी की मैं वन्दना करता हूँ। यह शास्त्र को वन्दन किया। पहले देव को वन्दन किया। आते हैं न तीन बोल? देव-शास्त्र-गुरु तीन। देव-शास्त्र-गुरु तीन। तीन को वन्दन करते हुए पहले देव को किया। परमेश्वर परमात्मा ऐसे होते हैं। पश्चात् वाणी को नमस्कार किया। वाणी दो नय के आश्रित जिसका कथन होता है और वीतराग के मुखकमल से निकली हुई होती है। कल्पित बनायी हुई वह वाणी वीतराग की नहीं, ऐसा कहते हैं। परमात्मा के मुख में से निकली हुई वाणी, उनकी परम्परा से उसकी रचना हुई, उसे जिनवाणी कहने में आता है। समझ में आया? ऐसा कहते हैं। बाद में जिन (जिनेन्द्रदेव) के नाम से शास्त्र लिखे, वह जिनवाणी नहीं है। समझ में आया? भारी कठिन काम।

जैन सम्प्रदाय में दो भंग पड़ गये। दरार पड़ गयी, दरार। दरार पड़ गयी ऐसी। वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर ने कही हुई वाणी, जिसे दिगम्बर के सन्तों ने सुरक्षित रखी है। समझ में आया? जिसमें दो नय का कथन यथार्थ चला आता है, वह वीतरागमार्ग में ही है। समझ में आया?

उसे **मैं वन्दना करता हूँ।** वाणी को वन्दन करता हूँ। व्यवहार डाला। इन परमात्मा को वन्दन करता हूँ, यह भी व्यवहार है। ऐसी भक्ति का विकल्प होता है। जानते हैं कि पुण्य बन्धन का कारण है, पुण्यबन्ध का कारण है। भगवान को वन्दन भी पुण्यबन्ध का कारण है; संवर-निर्जरा नहीं, धर्म नहीं। आत्मा के आनन्द, ज्ञानस्वरूप में एकाग्रता, वह उसे नमन और वन्दन और भक्ति -आत्मा की भक्ति को यहाँ संवर और धर्म कहने में आता है। यह निश्चय और वह भगवान की भक्ति का विकल्प, वह व्यवहार। वाणी को नमस्कार करना, वह भी विकल्प का व्यवहार है। कहो, समझ में आया? गजब!

व्यवहार है परन्तु व्यवहार से धर्म नहीं होता, उसके आश्रय से धर्म नहीं होता।

....पर्याय, आत्मा की एक समय की अवस्था वह व्यवहार है। त्रिकाल वस्तु द्रव्य, वह निश्चय है। मोक्षमार्ग साधना, वह व्यवहार है। आत्मा के पूर्ण स्वरूप शुद्ध के अन्तर्मुख श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति प्रगट हो, वह भी व्यवहार है। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा और भक्ति का विकल्प, वह तो असद्भूतव्यवहार है। ऐई! आहा..हा..! होता है, ऐसा यहाँ सिद्ध करके बतलाया है। वाणी कैसी होती है, उसकी परीक्षा करनी चाहिए, ऐसा कहते हैं। अकेला व्यवहार का कथन हो, वह जैन का कथन वीतराग का नहीं है। अकेला निश्चय का कथन हो और व्यवहार नहीं, वह जिन (जिनदेव) का कथन नहीं। समझ में आया?

उसे मैं वन्दन करता हूँ, लो! ऐसे शास्त्र को मैं वन्दन करता हूँ। देव को वन्दन किया और शास्त्र को पहिचानकर किया, हों! णमो अरिहंताणं, णमो अरिहंताणं किया करे, परन्तु अरिहन्त कैसे होते हैं, उनकी खबर नहीं। जिसे आत्मा की खबर नहीं, उसे उनकी खबर नहीं। आत्मा की खबर हो, शुद्ध चैतन्य निर्विकल्प आनन्द हूँ, ऐसा भान हो, उसे वीतराग की वाणी और वीतराग की पहिचान होती है, उसे व्यवहार कहने में आता है।

तीसरा श्लोक। देखो! इन दो नय के आश्रय से सर्वस्व कहने की पद्धति है, इसमें बड़ी गड़बड़ है। भगवान व्यवहार भी कहते हैं। परन्तु व्यवहार कहते हैं अर्थात् क्या? व्यवहार का विषय है। वस्तु नहीं है, ऐसा नहीं है, परन्तु वह व्यवहार समकित आदि कहना, वह कहीं वास्तविक तत्त्व नहीं है। अवास्तविक को कहने का नाम व्यवहार कहने में आता है। आहाहा!

अरे! जगत के प्राणी को सत्य मिलता नहीं और सत्य के लिये दौड़े, मृगजल... ओहो...! जन्म-मरणरहित होने का मार्ग, भगवान का निर्विकल्प मार्ग कोई अलौकिक है। उसे निश्चय कहने में आता है। वीतराग की वाणी में वह भी कथन होता है और जब तक पूर्ण सर्वज्ञ वीतराग आत्मा न हो, तब तक उसे देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति और श्रद्धा का भी राग आता है। ऐसा व्यवहार का कथन भी भगवान के शास्त्र में है। समझ में आया? भगवान को वन्दन करना, उस व्यवहारश्रद्धा को सच्ची श्रद्धा मान ले तो व्यवहार और निश्चय में विपरीत हो गया। व्यवहार को व्यवहार जाने और निश्चय को निश्चय जाने तो दो नय की पद्धति रही। समझ में आया? देव-शास्त्र और गुरु। अब गुरु को वन्दन करते हैं।

पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि पंच महाव्रतधारी थे, जिनके मुख में से आगम निकलता है, ऐसा आगे लिखा है। जिनके मुख में से आगम झरता है। ऐसे पद्मप्रभमलधारिदेव, देव / परमात्मा को पहिचानकर वन्दन किया, वाणी ऐसी होती है, उसे पहिचानकर वन्दन किया; अब, गुरु हमारे कौन थे उनका....

सिद्धान्तोद्धश्रीधवं सिद्धसेनं तर्काब्जार्कं भट्टपूर्वाकलंकम्।
शब्दाब्धीन्दुं पूज्यपादं च वन्दे तद्विद्याढ्यं वीरनन्दिं व्रतीन्द्रम्।।३।।

अपने गुरु सबमें प्रवीण थे, ऐसा कहते हैं। **उत्तम सिद्धान्तरूपी श्री के पति सिद्धसेन मुनीन्द्र की,...** वन्दन करता हूँ। ये दिगम्बर मुनि में कोई सिद्धसेन मुनि हुए हैं, उन्हें यह वन्दन है। श्वेताम्बर में वे सिद्धसेन मुनि हुए, उनकी यहाँ बात नहीं है। सिद्धसेन दिवाकर, सन्मति तर्क के रचनेवाले। उन्हें अब कोई इसमें डालता है। अरे भगवान! क्या करते हैं जीव? सन्मति तर्क आता है न एक? सिद्धसेन दिवाकर का। श्वेताम्बर में हुए हैं, वे नहीं। यह तो दिगम्बर में (कोई) महामुनि सिद्धसेन नामक हो गये हैं।

उत्तम सिद्धान्तरूपी श्री के पति.... जिनमें उत्तम सिद्धान्तरूपी लक्ष्मी के वे पति थे, **सिद्धसेन मुनीन्द्र को वन्दन करता हूँ।** वे मुनीन्द्र अर्थात् आचार्य कोई थे। **तर्ककमल के सूर्य भट्ट अकलंक मुनीन्द्र की,...** अकलंकदेव। **तर्ककमल के सूर्य=तर्करूपी कमल को प्रफुल्लित करने में सूर्य समान।** अकलंकदेव है न? तत्त्वार्थ राजवार्तिक बनाया है। ओहो..हो..! तर्करूपी कमल को विकसित करने के लिये सूर्य के समान थे। दिगम्बर मुनि, सन्त ऐसे पके! आकाश के स्तम्भ, धर्मधुरन्धर। ओहो..हो..! अरे, परन्तु परीक्षा नहीं होती, क्या हो? समझ में आया? जिन्हें कसौटी पर चढ़ाकर परीक्षा करे। जंग निकला हुआ है और जंग है या नहीं, इसकी खबर नहीं, ऐसा का ऐसा मान ले, वह मानना सच्चा नहीं है। यह तो परीक्षा करके मानना चाहिए। अकलंकदेव कैसे थे? तर्ककमल के सूर्य भट्ट अकलंकदेव।

शब्दसिन्धु के चन्द्र पूज्यपाद मुनीन्द्र की... शब्दरूपी समुद्र को उछालने में चन्द्र समान। पूज्यपादस्वामी। यह सर्वार्थसिद्धि टीका रचनेवाले। सर्वार्थसिद्धि (तत्त्वार्थसूत्र) की टीका, गजब टीका। तत्त्वार्थसूत्र की। गजब महा समुद्र, ज्ञान का समुद्र! उन्हें कहते हैं कि मैं वन्दन करता हूँ। परन्तु ऐसे हमारे गुरु तो तीनों में समान थे, ऐसा कहते हैं। **और**

तद्विद्या से... है न? **तद्विद्या से समृद्ध वीरनन्दि मुनीन्द्र की मैं वन्दना करता हूँ।** तीनों में प्रवीण थे। सिद्धान्तरूपी श्री के पति थे, तर्ककमल के सूर्य थे और शब्दसिन्धु के चन्द्र थे—ऐसे मुनि हो गये, देखो न! पद्मप्रभमलधारिदेव अपने गुरु की इतनी प्रशंसा करके वन्दन करते हैं। समझ में आया? भावलिंगी सन्त थे। छठवें-सातवें गुणस्थान में झूलनेवाले मुनि वीतरागी नग्न दिगम्बर वनवासी, ऐसे हमारे गुरु - ऐसा कहते हैं। तद्विद्या से सिद्धान्तादि तीनों में समृद्ध **वीरनन्दि मुनीन्द्र की मैं वन्दना करता हूँ।** देव-शास्त्र-गुरु तीन। तीन को नमस्कार किया। पद्मप्रभमलधारिदेव टीका करते हुए, टीका करनेवाले ने स्वयं किया है। चौथा श्लोक।

अपवर्गाय भव्यानां शुद्धये स्वात्मनः पुनः।
वक्ष्ये नियमसारस्य वृत्तिं तात्पर्य्यसञ्ज्ञिकाम्।।४।।

इन तीन को वन्दन किया। चौथा, अब यह किसके लिये है? **भव्यों के मोक्ष के लिये...** यह टीका करता हूँ, कहते हैं। योग्य प्राणी की मुक्ति के लिये। **तथा निज आत्मा की...**

मुमुक्षु : इस काल में मुक्ति कहाँ है?

पूज्य गुरुदेवश्री : मोक्ष ही है इस काल में। नहीं कहाँ? द्रव्यशुद्धि, ज्ञान, दर्शन, चारित्र हुए, वह मोक्ष ही है, सुन न! एकाध भव बीच में हो, उसकी कोई गिनती नहीं है। गिने कौन?

भव्यों के मोक्ष के लिये तथा निज आत्मा की शुद्धि के हेतु.... उसमें आता है न? यह टीका करते हुए मेरी शुद्धि होओ, वह शैली ली है। (समयसार का) तीसरा कलश है।

निज आत्मा की शुद्धि के हेतु नियमसार की 'तात्पर्यवृत्ति' नामक टीका मैं कहूँगा। लो! मेरे आत्मा की शुद्धि के लिये, भव्यजीव के मोक्ष के लिये इस टीका का विस्तार भगवान ने किया हुआ है। कुन्दकुन्दाचार्य का कहूँगा। ऐसा कहकर मांगलिक किया है। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)